वेदोऽखिलोधर्ममूलम्

ऋग्वेद
यजुर्वेद
सामवेद
अथर्ववेद

वेद प्रकाश

मासिक पत्र (6-7 प्रतिमाह) मूल्यः ५ रुपये (३०/-वार्षिक) अगस्त २०१७

कुल पृष्ठ संख्या २०, वजनः 40 ग्राम
प्रकाशन तिथिः 8 अगस्त 2017

अन्तःपथ

"श्रावणी पर्व अविद्या के नाश तथा विद्या की वृद्धि करने का विश्व का एकमात्र मुख्य पर्व" —*मनमोहन कुमार आर्य*	३ से ७
महर्षि पतंजलि ने जीवन की एक समुचित और संपूर्ण पद्धति को योग के रूप में ढाला है —*डॉ. गौतम श्रीमाली*	७ से ९
"योगेश्वर कृष्ण का युद्ध भूमि में अर्जुन को दिया गया आत्मज्ञान विषयक प्रेरणादायक व ज्ञानवर्धक वेदानुकूल उपदेश" —*मनमोहन कुमार आर्य*	१० से १५
यज्ञाग्नि की शिक्षा तथा प्रेरणा	१५ से १६
"वृक्षों में जीव विषयक ऋषि दयानन्द के विचार" —*मनमोहन कुमार आर्य*	१७ से १८

प्रभु से प्रार्थना

मेरे तीन अपराधों को माफ़ करोः—

यह जानते हुए भी कि—

1. तुम सर्वव्यापी हो, पर मैं तुम्हें हर जगह खोजता हूँ यह मेरा पहला अपराध है...
2. तुम शब्दों से परे हो, मैं तुमको शब्दों से बाँधता हूँ, एक नाम देता हूँ। यह मेरा दूसरा अपराध है...
3. तुम सर्वज्ञाता हो, मैं तुम्हें अपनी इच्छाएँ बताता हूँ, उन्हें पूरा करने को कहता हूँ। यह मेरा तीसरा अपराध है।

बोधकथा

–महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

एक धनी व्यक्ति था। दिन रात उसे केवल धन संग्रह करने की ही इच्छा रहती थी। वह इतना बुद्धिमान था कि एक कौड़ी भी कहीं इधर-उधर न जाने देता था। क्या मजाल कि कोई साधु, संन्यासी, निर्धन इसके घर से कुछ ले जाए।

एक बार एक भिखारी उसकी स्त्री से जो धर्मात्मा और ईश्वर-भक्त थी, थोड़े से चावल ले गया। बनिये को जैसे ही पता चला वह दौड़ा-दौड़ा बाहर गया। बूढ़ा आगे निकल गया था। बनिये ने अन्ततः उसे जा पकड़ा और कहा–"अरे! तू क्या लिये जाता है। स्त्री को ठग कर चला है।" यह कहकर चावल वापस ले लिये और घर पहुँचकर स्त्री को भी दो-चार सुनाईं।

स्त्री उसे बार-बार समझाती थी कि देखिए यह धन साथ जाने वाला नहीं है। कभी मुँह से 'ओम्' का नाम ले लिया करो। परन्तु बनिये पर कुछ प्रभाव नहीं होता था। वह दिन-रात रुपये पर रुपया जोड़ने में व्यस्त था।

स्त्री ने समझाया–'यह शरीर विषय-भोग के लिए नहीं अपितु ईश्वरभक्ति के लिए है। यदि दान न करें तो भक्ति ही किया करें।' इसमें पैसा खर्च नहीं होता। बनिये ने कहा–"हाँ! हाँ!! परन्तु जल्दी क्या है? ईश्वर जप भी कर लेंगे।"

समय व्यतीत होता गया। बनिये को ईश्वरभक्ति का समय न मिला। अचानक वह बीमार हो गया। बनिये ने स्त्री से कहा–"कोई वैद्य बुलाना चाहिए।" वैद्य ने दवाई लिखी। स्त्री ने दवाई मँगवाई और रख दी। बनिया प्रतिक्षा करता रहा कि दवाई दी जाएगी। प्रातः से सायंकाल हो गया, परन्तु बनिये को दवाई नहीं पिलाई गई। अन्ततः बनिये ने स्त्री को कहा कि दवाई अभी तक क्यों नहीं पिलाई? स्त्री ने कहा–"दवा मँगवाकर रक्खी हुई है।"

बनिया–तो फिर देती क्यों नहीं? क्या सोचती है?

स्त्री–केवल यही विचार है कि जल्दी क्या है? आज न पिलाई तो कल पिला देंगे। कभी-न-कभी तो दी ही जाएगी।

बनिया–और यदि मैं मर गया तो दवाई क्या काम देगी?

स्त्री–अब मौत याद आई है। जब ईश्वरभक्ति के लिए कहती थी तब आप कहते थे कि जल्दी क्या है? यदि आपको मरना याद होता तो ऐसा न कहते। जिस ओषधि के लिए प्रतिदिन कहती थी, उसे आपने कभी पीने की आवश्यकता न समझी। जिससे आत्मा शुद्ध और बलवान् होता है, क्या पता अगला जन्म किसी पशुयोनि में हो तो फिर वह महौषधि कैसे पी जा सकती है?

बनिया–इस दवा से शरीर की रक्षा होती है।

स्त्री–इस दवाई से आत्मा बचता है।

बनिया–इस दवाई से शरीर शक्तिशाली और काम करने की शक्ति आती है।

स्त्री–उस ओषधि से शरीर व आत्मा शक्तिशाली बनते हैं जो भक्ति नहीं करता उसके आत्मा को पशुओं के शरीरों में रखा जाता है। क्या उन योनियों में आप संसार का कोई काम कर सकते हैं, धन-संग्रह कर सकते हैं?

बनिया–मैं जान गया प्रिय! आज से ही ईश्वरभक्ति आरम्भ करता हूँ।

कितने ही मनुष्य हैं, जो इस बनिया की भाँति आत्मा से अधिक शरीर का ध्यान रखते हैं, उनका आत्मा चाहे निर्बल हो, परन्तु उसकी और ध्यान नहीं देते। हाँ, निर्बल शरीर के लिए टॉनिक-शक्ति देने वाली औषधियों का प्रयोग करते हैं। क्या आत्मा की ओर से असावधान होकर वे सदा रहने वाला सुख प्राप्त कर सकेंगे? कदापि नहीं।

वेदप्रकाश

वेदप्रकाश

संस्थापक : **स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द**

वर्ष ६७ अंक १ वार्षिक मूल्य : तीस रुपये, एक प्रति ५ रुपये, अगस्त, २०१७

सम्पा॰ **अजयकुमार** पूर्व सम्पादक : स्व॰ **स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

"श्रावणी पर्व अविद्या के नाश तथा विद्या की वृद्धि करने का विश्व का एकमात्र मुख्य पर्व"

—मनमोहन कुमार

भारत में श्रावण मास की पूर्णिमा को श्रावणी पर्व के रूप में मनाने की प्राचीन परम्परा है। यह पर्व आर्य पर्व है जिसमें वैदिक धर्म व संस्कृति के संवर्धन व उन्नयन का रहस्य विद्यमान है। श्रावण मास वर्षा ऋतु का मास होता है। इस माह में प्राय: प्रतिदिन अथवा अधिकांश दिनों में देश के अधिकांश भागों में वर्षा होती है जिससे नदियों का जल स्तर बढ़ जाता है और अनेक स्थान बाढ़ की चपेट में आ जाते हैं। वर्षा ऋतु में सड़क मार्ग से एक स्थान से दूसरे स्थान पर आने जाने में बाधायें भी आती हैं। देश ने विगत एक शताब्दी में उससे पूर्व शताब्दियों की तुलना में सभी क्षेत्रों में आशातीत प्रगति की है। अब पूर्व काल के समान वर्षा ऋतु लोगों को पीड़ित नहीं करती न कष्ट ही देती है। नगरों में अच्छी सड़के हैं, समृद्ध लोगों के पास कारें आदि हैं, वर्षा ऋतु में भी बसें व अन्य वाहन चलते हैं। अत: लोग वर्ष के अन्य दिनों की भाँति ही कार्य करते हैं। यह बात अलग है कि पैदल व दो पहिया वाहनों वाले लोगों को आवागमन में कठिनाईयाँ होती हैं। अधिक वर्षा से नदियों का जल स्तर बढ़ जाने से अनेक स्थानों पर बाढ़ व जल भराव की स्थिति बनती है जिससे जन जीवन अस्त व्यस्त भी होता है। अत: आधुनिक समय में भी जहाँ सभी क्षेत्रों में प्रगति हुई है, वहीं जन जीवन में बाधक प्राकृतिक घटनाओं पर पूर्ण नियंत्रण नहीं पाया जा सका है। अत: प्राचीन काल में श्रावण मास में वर्षा के कारण लोग कार्यों से अवकाश रखते थे और घर में रहकर वेदों व वेद व्याख्या विषयक ग्रन्थों का स्वाध्याय कर आध्यात्मिक व अन्य विषयों का अपना ज्ञान बढ़ाते थे।

प्राचीन काल में आज की तरह सभी ग्रन्थ मुद्रित रूप में सबको

सुलभ नहीं थे। अतः लोग निकटवर्ती आश्रमों में जाकर रहते थे और वहाँ रहने वाले वेदज्ञ विद्वानों से जीवन के उत्थान से संबंधित उपदेशों का श्रवण करते थे। ऐसा करने से ही श्रावण मास व इसकी पूर्णिमा के दिन मनाये जाने वाला श्रावणी-पर्व सार्थक होता था। समय के साथ-साथ लोगों में आलस्य व प्रमाद बढ़ने के कारण हमारे ब्राह्मणों व इतर वर्णों में वेदों के अध्ययन के प्रति रुचि कम होती गई और श्रावण मास के स्वाध्याय पर्व का स्वरूप विकृत होकर रक्षा बन्धन पर्व इसका रूप बन गया। इस पर्व का रक्षा बन्धन रूप भी इस दृष्टि से सार्थक होता है कि हम ऋषियों व वेदज्ञ योगियों के आश्रमों में जाकर, उनसे ज्ञान प्राप्त कर, अपने जीवन की रक्षा करें। इसके लिए वेदों का ईश्वर, जीवात्मा व सृष्टि विषयक यथार्थ ज्ञान व उनका आचरण आवश्यक है। ऐसा करने से अविद्या का नाश व विद्या की वृद्धि सम्भव होती है। प्राचीन काल में चातुर्मास वा श्रावण मास में वेदाध्ययन व वेदों के स्वाध्याय का कुछ ऐसा ही स्वरूप प्रतीत होता है। कालान्तर में श्रावणी पर्व का यह स्वरूप भी नहीं रहा और इसका विकृत रूप बहिनों द्वारा अपने भाईयों व राजस्थान के वीर राजपूतों की कलाईयों पर रक्षा सूत्र बाँधने ने ले लिया जिससे आवश्यकता पड़ने पर वह उनकी रक्षा कर सकें। इसका एक कारण यही प्रतीत होता है कि मुस्लिम शासन काल में जब नारियों पर अत्याचार व उनके अपमान की घटनायें होने लगीं तो बहिनें अपने भाईयों व समाज के वीर पुरुषों को भाई बनाकर उन्हें रक्षा सूत्र बाँधती थी। अतः अतीत में इस पर्व के अवसर पर वेदों के स्वाध्याय सहित अनेक परम्परायें जुड़ गईं और समय के साथ रक्षा बन्धन आदि का स्वरूप बदलने से वर्तमान परिस्थितियों में इसकी उपयोगिता भी कम व नगण्य सी रह गई है। जहाँ तक वेदों के स्वाध्याय व उसके अनुरूप आचरण का प्रश्न है, वह जितना पहले कभी उपयोगी था उतना ही आज भी है और आगे भी रहेगा।

श्रावणी पर्व वेदों के स्वाध्याय का पर्व है जिसे ऋषि तर्पण नाम भी दिया जाता है। ऋषि तर्पण का अर्थ ऋषियों को सन्तुष्ट करना व उनके ऋण से उऋण होना है। ऋषियों की प्रिय वस्तु वेदों का ज्ञान है जिसकी प्राप्ति वेदोपदेश ग्रहण करने व वेदों के स्वाध्याय से होती है। वेदों की रक्षा मानव जाति के अस्तित्व की रक्षा के समान महत्वपूर्ण है। अतः वेदों

का संवर्धन व उसका अधिकाधिक प्रचार आवश्यक व अनिवार्य है। जो गृहस्थ व व्यक्ति वेदों के ज्ञान की प्राप्ति में स्वाध्याय आदि कार्यों में लगा है वह ऋषियों का प्रिय होता है। आजकल भी देखते हैं कि विद्यालय के अध्यापक उस विद्यार्थी को पसन्द करते हैं जो अधिक अध्ययनशील, चिन्तन, मननशील व अनुशासित होता है और जिसे पाठ्यक्रम का पूर्ण व अधिकांश ज्ञान होता है। अतः ऋषियों को सन्तुष्ट करने वा उनके ऋण से उऋण होने का एकमात्र उपाय यही है कि हम उपलब्ध वेद ज्ञान को बढ़ायें, उसका अध्ययन कर उससे अलंकृत हों, दूसरों में अधिकाधिक उसका प्रचार व प्रसार करें जिससे वेदों का उपलब्ध ज्ञान अप्रवृत्त होकर नाश को प्राप्त न हो।

हमने देखा है कि मध्यकाल में वेदों का ज्ञान प्रायः पूरी तरह से अप्रवृत्त हो गया था जिससे देश व संसार में अज्ञान का अन्धकार फैल गया। अविद्याजन्य मत-मतान्तर उत्पन्न हो गये जो आज भी समाप्त होने का नाम नहीं ले रहे हैं। आज भी लोगों में सत्य ज्ञान के प्रति प्रवृत्ति जागृत नहीं हो सकी है। यह आज के समय का सबसे बड़ा आश्चर्य है कि मनुष्यों में सत्य ज्ञान की प्राप्ति व उसके अभ्यास की प्रवृत्ति नहीं है। इसका परिणाम मनुष्य व देशवासियों को दुःख के अतिरिक्त अन्य कुछ होने वाला नहीं है। इसे ऋषि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में अच्छी तरह से समझाया है। वेद ज्ञान दुःखों से मुक्ति का कारण है। यदि वेद ज्ञान से शून्य होंगे तो हमारे आत्मिक व शारीरिक दुःख दूर नहीं होंगे। जब तक मुक्त नहीं होंगे, भिन्न-भिन्न योनियों में बार-बार हमारा जन्म होता रहेगा। अतः वेदों व वेदों के व्याख्या ग्रन्थों का स्वाध्याय व उनका जीवन में आचरण ही ऋषि तर्पण है। यह ऋषि तर्पण इसलिए कहलाता है कि इससे हम ऋषि ऋण से मुक्त होते हैं। वेदों का स्वाध्याय व अध्ययन जितना अधिक होगा उतना वैदिक धर्म व संस्कृति उन्नत व समृद्ध होगी। स्वाध्याय वा ऋषि तर्पण का यह क्रम लगभग साढ़े चार मास चलता है जिसका आरम्भ उपाकर्म से और समापन उत्सर्जन से होता है। इस विषय में अधिक जानने के लिए आर्य विद्वान पं. भवानी प्रसाद लिखित 'आर्य पर्व पद्धति' का अध्ययन आवश्यक है।

वेद और यज्ञ का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। सभी यज्ञ वेद मन्त्रों के

पाठ व वेद मंत्रों में निहित विधियों के द्वारा ही होते हैं। अत: श्रावण मास में यज्ञों को नियम पूर्वक करना चाहिये। यज्ञ से हानिकारक कीटाणुओं का नाश होता है। वायु की दुर्गन्ध का नाश होकर वायु सुगन्धित हो जाती है जो स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होती है। अनेक प्रकार के रोग नियमित यज्ञ करने से दूर हो जाते हैं और यज्ञ करने से अधिकांश साध्य व असाध्य रोगों से बचाव भी होता है। यज्ञ के प्रभाव से निवास स्थान व घर के भीतर की वायु यज्ञाग्नि की गर्मी से हल्की होकर बाहर चली जाती है और बाहर की शीतल व शुद्ध वायु घर के भीतर प्रवेश करती है जो स्वास्थ्यप्रद होती है। वायु में गोघृत व वनौषधियों सहित मिष्ट व पुष्टिकारक पदार्थों की आहुतियाँ देने से उस वायु का लाभ न केवल यज्ञकर्ता को होता है अपितु वह वायु दूर-दूर तक जाकर असंख्य लोगों को लाभ पहुँचाती है। जितने लोग लाभान्वित होते हैं उसका पुण्य भी यज्ञकर्ता को मिलता है। यज्ञ में वेदमन्त्रों को बोलकर आहुति देने से मन्त्र में निहित ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना सहित उसके अर्थों को जानकर उसके अनेक आध्यात्मिक व भौतिक लाभ भी यज्ञ करने वाले मनुष्य को प्राप्त होते हैं। इससे वेदों की रक्षा भी होती है। इसी कारण वैदिक धर्म में प्रत्येक पर्व पर यज्ञ करने का विधान है जिससे यह सभी लाभ यज्ञकर्ता व उसमें उपस्थित लोगों सहित पड़ोसियों व दूरदेशवासियों को भी प्राप्त हो सकें। श्रावणी के दिन विशेष पर्व पद्धति के अनुसार यज्ञ आयोजित कर इसका लाभ सभी गृहस्थियों को उठाना चाहिये।

श्रावणी पर्व श्रावण मास की पूर्णिमा के दिन मनाया जाता है। हम अपने अनुभव के आधार पर कहना चाहते हैं कि श्रावण मास से आरम्भ कर चार मास तक वैदिक साहित्य का अध्ययन वा स्वाध्याय करना चाहिये, इससे वर्तमान व शेष जीवन सहित परजन्म में भी लाभ होता है, ऐसा सत्शास्त्र बताते हैं। इसके लिए सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका, संस्कारविधि, आर्याभिविनय का अध्ययन कर ऋषि दयानन्द कृत ऋग्वेद व यजुर्वेद भाष्य का स्वाध्याय करना चाहिये। ऋग्वेद के अवशिष्ट भाग व अन्य वेदों पर आर्य विद्वानों के भाष्य का अध्ययन करना जीवन में अभ्युदय व नि:श्रेयस में अग्रसर करता है। आर्य विद्वानों स्वाध्याय के लिए अनेक ग्रन्थों की रचना की है जिसके अध्ययन से मनुष्य निर्भ्रान्त

स्थिति का लाभ प्राप्त करता है (देखें पृष्ठ 19)। यही जीवन का उद्देश्य भी है। इन्हीं शब्दों के साथ इस लेख को विराम देते हैं। ओ३म् शम्।

महर्षि पतंजलि ने जीवन की एक समुचित और संपूर्ण पद्धति को योग के रूप में ढाला है।

—डॉ. गौतम श्रीमाली

ऋषियों ने योग की कई परिभाषाएँ की हैं।

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः। मन के विचारों को रोकना योग है।

योगः समाधिः। समाधि को योग कहते हैं। व्यास।

योगः कर्मसु कौशलम्। गीता, कार्यकुशलता ही योग है।

समत्वं योग उच्यते। मन की समता ही योग है।

इसी प्रकार भिन्न-भिन्न ऋषियों ने योग की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ की हैं। इन सबमें महर्षि पतंजलि के योग को ही सब ऋषियों तथा विद्वानों ने एक स्वर से स्वीकार किया है, क्योंकि इसी में पूर्णता है। गौतम बुद्ध का बौद्ध धर्म पूर्णतया पातंजल योग पर आधारित है। महावीर का जैन धर्म पूरी तरह योग से ही संबंधित है। ये दोनों धर्म आर्य धर्म से अलग इसलिए हुए क्योंकि इन्होंने योग को तो अपनाया किन्तु उसमें तपस्या तथा कर्मकांड की अति डाल दी।

वह विशुद्ध योग न रहकर एक अलग ही जीवन पद्धति बन गई। पतंजलि के योग में शुद्धता है। वह जीवन की एक पद्धति है। ईसाइयों ने दो साल पहले अमरीका के कोर्ट में बाबा रामदेव के योग के खिलाफ एक याचिका दायर की थी कि हिंदू लोग योग के नाम पर अपना धर्म फैला रहे हैं। कोर्ट के जजों ने विद्वानों को बुलाकर पातंजल योग का अध्ययन किया और अंत में निर्णय सुनाते हुए कहा कि योग कोई धर्म नहीं है। वह जीवन जीने की एक पद्धति है। शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की पूर्णता प्रदान करने वाला विधान है। इसलिए इसे धर्म Religion की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। इसे किसी भी धर्म को माननेवाला व्यक्ति अपना सकता है।

सऊदी अरब के मौलानाओं से जब भारत के मुसलमानों ने शिकायत

की कि बाबा ओम् का उच्चारण करवाते हैं। वह हमारे मज़हब के खिलाफ है तो उन्होंने यह फैसला सुनाया कि ओम् नहीं बोल सकते तो ॐ ॐ तो कर सकते हो। वह तो मज़हब में नहीं है। मौलानाओं ने भी योग को धर्म मानने से इनकार कर दिया।

क्या है पातंजल योग में जो इसे सबसे अलग करता है? आज लोग क्यों इसे अपनाने के लिए बाध्य हो रहे हैं? सभी धर्मों के लोगों ने तथा समस्त मानव जाति ने योग को भविष्य का धर्म स्वीकार कर लिया है। यही संपूर्ण मानव एवं मानवता को एक सूत्र में बाँधने में सक्षम है।

पातंजल योग क्या है? महर्षि पतंजलि ने योग को दो भागों में बाँटा है, बहिरंग और अंतरंग योग।

बहिरंग योग बाह्य शरीर से संबंधित है और अंतरंग योग मन या चित्त अर्थात् सूक्ष्म शरीर से जुड़ा हुआ है। बहिरंग योग के फिर पांच भाग हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार।

यम नियम का अर्थ है, मानसिक तैयारी। जो मन से तैयार नहीं है, वह योगी नहीं बन सकता। यदि जीवन हिंसा, झूठ आदि से भरा हुआ है तो योगी कैसे बनेगा। शरीर और मन की शुद्धि। हर प्रकार के कष्टों को सहकर अखंड धैर्यवान बनना। टीन के डिब्बे की तरह झट ठंडा या गरम न हो जाना। ईश्वर में अखंड श्रद्धा और भक्ति होना।

इन सबके बाद, प्रत्याहार। जीवन में संतुष्टि। यदि धन कमाने की लालसा बनी हुई है। पैसे के लिए हाय हाय मची है। दस बारह घंटे काम करने पड़ते हैं तो पहले पैसा कमाने पर ध्यान दो, योग पर नहीं। मान सम्मान, आदर, मान बड़ाई पाने की लालसा बनी है, तो पहले वह प्राप्त कर लो। धन की इच्छा, मान की इच्छा, पुत्र की इच्छा बनी है, तो पहली वह प्राप्त करो।

जब लगने लगे कि अब बस, बहुत हो गया। अब हर चीज़ से पूर्ण विराम। स्त्री से मन भर गया। कामवासना से तृप्त हो गए।

अब कोई स्त्री मोहित नहीं कर सकती। धन, व्यापार, परिवार, सबके कर्तव्यों से मुक्त हो गए। मन बाहर के विषयों की तरफ न भागकर अब अंदर की तरफ भागने लगा।

तब समझो, प्रत्याहार सिद्ध हो गया। पतंजलि कहते हैं, अब अंदर

की ओर जाओ। धारणा, ध्यान, समाधि अब तुम्हारे काम की चीज़ है। अब मन लगेगा। अब मन नहीं भागेगा। अब धारणा, ध्यान, समाधि तीनों को इकट्ठा करके संयम का अभ्यास करो। संयम से चित्त का साक्षात्कार करो। कर्मों का साक्षात्कार करो। आत्मा का साक्षात्कार करो। अंत में अपने को इन सबसे अलग करो।

जब तक पंच क्लेश बने हुए हैं। तीन प्रकार के कर्म बने हुए हैं। चित्त बना हुआ है। संस्कार बने हुए हैं। तब तक मुक्ति नहीं मिलती। जब कर्म, क्लेश, संस्कार, चित्त, मन सब नष्ट हो जाते हैं, तब मुक्ति मिलती है। शुभ कर्मों से सुख मिलता है, मुक्ति नहीं मिलती। मुक्ति के लिए शुभ, अशुभ, दोनों प्रकार के कर्मों से छूटना पड़ता है। यदि शुभ कर्म करेंगे तो सुख भोगना ही पड़ेगा। बुरे कर्म करेंगे तो दुःख भी भोगना पड़ेगा। दोनों कर्मों से जब छूट जाएँगे तब मुक्ति मिल जाएगी।

योग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि भाग्य को भूलकर, पिछले जन्म को भूलकर, पिछले कर्मों को भूलकर, नया जीवन जीने, नए कर्म करने की यह प्रेरणा देता है। यदि मुक्ति तक नहीं भी पहुँच पाए तो भी चिंता की कोई बात नहीं है। जीवन में पूर्ण संतुष्टि, पूर्ण शांति, पूर्ण आनंद की प्राप्ति योग के थोड़े से अनुष्ठान से ही प्राप्त होने लगता है। आसन और प्राणायाम के अभ्यास से शरीर के समस्त रोगों से छुटकारा मिल जाता है।

कैंसर, डायबिटीज, हृदय रोग आदि भयंकर बीमारियों से भी छूट जाते हैं। मनुष्य दीर्घायु हो जाता है। डिप्रैशन, तनाव, आदि से मुक्ति मिल जाती है। योग संपूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करता है। मानसिक स्वास्थ्य प्रदान करता है। जीवन में सुख, शांति, समृद्धि, कुशलता, समता सभी की प्राप्ति हो जाती है। इसीलिए योग को धर्म नहीं, बल्कि, जीवन पद्धति माना गया है।

यदि किसी ने बहुत सी पुस्तकें पढ़ी हैं, लेकिन योगदर्शन नहीं पढ़ा तो उसका अध्ययन अधूरा है। योग के अध्ययन से ही पूर्णता की प्राप्ति होती है। बुद्धि के ताले खुलते हैं। धर्म को समझने की क्षमता प्राप्त होती है। इसलिए हर धर्म, जाति, संप्रदाय के व्यक्ति को योग का अध्ययन अवश्य करना चाहिए।

"योगेश्वर कृष्ण का युद्ध भूमि में अर्जुन को दिया गया आत्मज्ञान विषयक प्रेरणादायक व ज्ञानवर्धक वेदानुकूल उपदेश"

—मनमोहन कुमार आर्य,

भारत के इतिहास में रामायण एवं महाभारत ग्रन्थों का विशेष महत्त्व है। यह दोनों सत्य इतिहास के ग्रन्थ हैं। दुःख है कि हमारे स्वार्थ बुद्धि के कुछ पूर्वजों ने इनमें बड़ी मात्रा में प्रक्षेप किये हैं। आर्यसमाज शास्त्रों की उन्हीं बातों को स्वीकार करता है जो बुद्धिसंगत, व्यवहारिक, अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णनों से रहित, पूर्व प्रसंग के अनुरूप, सृष्टिक्रम और देश, काल के अनुरूप हों। इस दृष्टि से आर्यसमाज के विद्वानों ने इन ग्रन्थों के प्रक्षेप से रहित अनेक ग्रन्थों की रचना वा सम्पादन किया है। इस क्रम में कीर्तिशेष स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती जी का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने रामायण एवं महाभारत के विशिष्ट संस्करण तैयार किये जो आज भी आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध प्रकाशक **'विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली**–110006' से उपलब्ध हैं। रामायण पर अनेक अन्य विद्वानों ने भी कार्य किया है। कुछ विद्वान हैं पं. आर्यमुनि जी और महात्मा प्रेमभिक्षु जी। इनके संस्करण भी आर्यसमाज के प्रकाशकों से उपलब्ध हैं। अन्य भी कुछ विद्वान हैं जिनके रामायण पर संस्करण उपलब्ध होते हैं। महाभारत पर पं. सन्तराम जी ने शुद्ध महाभारत नाम से एक ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन पहले दयानन्द संस्थान, दिल्ली से हुआ था व उसके बाद दो–तीन खण्डों में मथुरा से सत्य प्रकाशन द्वारा तपोभूमि मासिक पत्रिका के विशेषांक रूप में किया गया। हमें इनमें से अनेक ग्रन्थों को पढ़ने का सुअवसर मिला है। पाठक चाहें तो इनका लाभ उठा सकते हैं। हमारे पौराणिक प्रकाशकों के इन दोनों ग्रन्थों के संस्करण प्रक्षेपरहित न होने से उनकी महत्ता इसलिये कम है कि पाठकों को सत्य व असत्य दोनों प्रकार की घटनाओं को पढ़ना पड़ता है और वह अपने विवेक से सत्यासत्य का निर्णय नहीं कर पाते जिससे अन्धविश्वास व पाखण्ड फैलता है।

'श्रीमद्भगवद्गीता' महाभारत का एक भाग है। इसके दूसरे अध्याय

में योगेश्वर श्रीकृष्ण जी का वह उपदेश भी है जो उन्होंने अपने शिष्य व मित्र अर्जुन को महाभारत युद्ध की रणभूमि कुरुक्षेत्र में दिया था। आज हम उसी आत्मज्ञान विषयक श्रीकृष्ण जी के उपदेश का कुछ भाग प्रस्तुत कर रहे हैं। गीता में कृष्ण जी द्वारा अर्जुन को दिया गया यह उपदेश संजय द्वारा धृतराष्ट्र के पूछने पर उन्हें सुनाया गया था। श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन का मोह व भ्रम दूर करने के लिए कहा कि हे अर्जुन! तुझको यह अनार्यों वाला व्यवहार जो स्वर्ग प्राप्ति में बाधक और अपयशकारक है, वह युद्ध के इस कठिन समय में कहाँ से आ गया? कृष्ण जी ने कहा कि हे अर्जुन! निर्बलता को मत प्राप्त हो। तुझ में यह निर्बलता उचित प्रतीत नहीं होती। अपने हृदय की तुच्छ दुर्बलता को त्याग दे। हे शूरवीर! दुर्बलता त्यागकर खड़ा हो जा। अर्जुन ने कृष्ण जी को कहा कि हे शत्रुघातिन् मधुसूदन (श्रीकृष्ण)! मैं पूजा के योग्य भीष्म पितामह और अपने गुरु द्रोणाचार्य के सामने खड़ा होकर युद्ध में बाणों से कैसे लड़ूगाँ। अर्जुन ने श्रीकृष्ण जी को युद्ध न करने के अन्य अनेक कारण भी गिनाये। उनका समाधान करते हुए श्रीकृष्ण जी ने कहा कि तू अशोचनीयों का शोक करता है और ज्ञानियों की जैसी बातें करता है। बुद्धिमान् लोग मरों और जीवितों का शोक नहीं किया करते। यह नहीं है कि मैं और तू और ये राजा लोग कभी न थे, और न यह है कि हम सबके पश्चात् न होंगे। कृष्ण जी अर्जुन को समझा रहे हैं कि सबका जीवात्मा अजर व अमर होने से हर काल में विद्यमान रहता है।

कृष्ण जी ने अर्जुन को कहा कि जिस प्रकार प्राणी के इस देह में बालकपन, जवानी और बुढ़ापे की अवस्थायें होती हैं वैसे ही मृत्यु होने पर उसे दूसरे देह की प्राप्ति भी होती है। धीर पुरुष अपने देह के प्रति कभी मोह व भय नहीं करते हैं। हे कुन्तीपुत्र भरतवंशी। इन्द्रियों के विषय रूप, रस, गन्ध, शब्द व स्पर्श आदि तो शीत्–उष्ण व सुख–दुःख देने वाले हैं और यह आनी–जानी वस्तु हैं अर्थात् अनित्य हैं। उनको तू सहन कर। हे पुरुषार्थियों में श्रेष्ठ अर्जुन! सुख दुःख को समान समझने वाले जिस धीर पुरुष को ये इन्द्रियों के विषय सताते नहीं हैं, वही पुरुष अमर होने को समर्थ है। असत् का भाव, सत्ता व अस्तित्व नहीं होता और सत् वस्तुओं का अभाव नहीं होता। तत्वदर्शियों ने सत् और असत् दोनों को

यथार्थ स्वरूप में देख व जान लिया है। कृष्ण जी कहते हैं कि जिस ईश्वर से सृष्टि का यह फैलाव हुआ है उसे तू अविनाशी जान। कृष्ण जी कहते हैं कि इस अविनाशी जीवात्मा का कोई विनाश नहीं कर सकता। नित्य, अविनाशी, शरीरधारी, अतीन्द्रिय जीवात्मा के यह देह वा शरीर अन्त वाले अर्थात् नश्वर हैं। इसलिये हे भरतवंशी तू युद्ध कर। हे अर्जुन! जो मानव शरीर में विद्यमान जीवात्मा को मारने वाला समझता है और जो इस जीवात्मा को मारा गया समझता है, वे दोनों ठीक नहीं समझते। वह अज्ञानी हैं। क्योंकि न यह जीवात्मा किसी को मारता है और न किसी के द्वारा मारा ही जाता है। यह जीवात्मा न कभी उत्पन्न होता है और न कभी मरता है। यह होकर फिर न होगा, ऐसा नहीं है। यह जीवात्मा अजन्मा, नित्य, सनातन और प्राचीन है। शरीर के मारे जाने पर भी यह मारा नहीं जाता अर्थात् इसका अस्तित्व बना रहता है।

श्रीकृष्णजी ने अर्जुन को कहा कि पार्थ (अर्थात् पृथा के पुत्र) जो इस अजन्मा, अमर, अविनाशी जीव को नित्य जानता है, वह पुरुष क्योंकर किसको मरवाता है और किसको मारता है? किन्तु जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को उतार कर दूसरे नवीन वस्त्रों को ग्रहण कर लेता है, ऐसे ही देहधारी पुराने देहों को त्यागकर अन्य नये देहों को पा लेता है। जीवात्मा को शस्त्र काटते नहीं हैं, इसको अग्नि जला नहीं सकती। जल इसे गला नहीं सकते और वायु जीवात्मा को सुखाती नहीं है। यह आत्मा अच्छेद्य अर्थात् न कटने वाला, न जलने वाला, न गलने वाला और न सूखने वाला है। यह आत्मा सनातन अचल, स्थिर, सर्वत्र पहुँचने वाला और नित्य है। मनुष्य का जीवात्मा इन्द्रियों का विषय नहीं होने से अव्यक्त है। यह चित्त का विषय न होने से अचिन्त्य है, विकार को प्राप्त न होने से यह अविकारी कहा जाता है। आत्मा ऐसा है, इस आत्मा को इस प्रकार का जानकर अर्जुन तू शोक नहीं कर सकता। यदि तू इस जीवात्मा को नित्य-नित्य उत्पन्न होने वाला और नित्य-नित्य मरने वाला भी समझता है, तो भी हे अर्जुन तू इसका शोक नहीं कर सकता। श्री कृष्ण जी कहते हैं कि हे अर्जुन! उत्पन्न हुए मनुष्य की मृत्यु अवश्यम्भावी है, मरे हुए मनुष्य की जीवात्मा का जन्म भी अटल है। जिसको हटाया या बदला नहीं जा सकता, उसके विषय में तू शोक नहीं

कर सकता। हे भरतवंशी! सब जीव पहले अप्रकट थे, बीच में प्रकट हो गये हैं, अन्त में भी छिप जाने वाले ही हैं, इससे इनमें शोक क्या करना है? कृष्ण जी कहते हैं कोई इस जीव को देखकर आश्चर्य करता है, कोई इसका वर्णन इसे आश्चर्य मानकर करता है, कोई इसे सुनकर आश्चर्य करता है और कोई इसे सुनकर भी जानता नहीं है। हे भरतवंशी अर्जुन! सब के देह में यह देहवाला आत्मा सदा अवध्य है। यह नहीं मारा जा सकता है। इसलिये अर्जुन तू सब प्राणियों के मरने पर शोक नहीं कर सकता।

कृष्ण जी अर्जुन को कहते हैं कि तुझे अपने धर्म का विचार करके भी डरना नहीं चाहिये क्योंकि धर्मयुक्त युद्ध के अतिरिक्त क्षत्रिय का अन्य किसी प्रकार से कल्याण नहीं है। कृष्ण जी अर्जुन को यह भी समझाते हैं कि तू यह समझ कि तुझे अकस्मात् स्वर्ग का खुला हुआ द्वार मिल गया है। ऐसे युद्ध को तो सौभाग्यशाली क्षत्रिय पाते हैं। यदि तू इस धर्मयुक्त संग्राम को नहीं करेगा तो फिर अपने धर्म और यश को छोड़कर पाप को पायेगा। लोग मेरे अपयश की चर्चा सदा-सदा किया करेंगे। हे अर्जुन! कीर्तिमान् की अपकीर्ति मौत से भी बढ़कर होती है। तेरे युद्ध न करने पर महारथी शूरवीर लोग तुझको डर कर युद्ध से हटा हुआ समझेंगे। जिनके सामने तू बहुत मान-सम्मान पाया हुआ है, युद्ध न करने पर उन लोगों में तू हलकेपन को प्राप्त होगा। तेरे शत्रु तेरे सामर्थ्य की निन्दा करते हुए तुझे बहुत से अपशब्द कहेंगे। भला इससे बढ़कर तेरे लिये क्या दुःख हो सकता है? यदि तू मारा गया तो स्वर्ग को पावेगा और जीतकर पृथिवी के सुखों को भोगेगा। इसलिये हे कुन्ती पुत्र! तू निश्चय करके युद्ध के लिये खड़ा हो जा। सुख और दुःख को, लाभ और हानि को, जय और पराजय को एक सा समझकर युद्ध के लिए तत्पर हो जा, इसका दृढ़ निश्चय कर ले। ऐसा करने से तुझे पाप नहीं लगेगा।

कृष्ण जी के उपदेश सुनकर अर्जुन का मोह व शंकायें दूर हो गई थीं और वह युद्ध के लिए तैयार हो गया था। उसने युद्ध किया और पाण्डवों की विजय हुई। आज भी लोग कृष्ण जी, अर्जुन, भीम आदि की वीरता व युद्ध कौशल की प्रशंसा करते हैं और उनसे प्रेरणा लेते हैं। युधिष्ठिर का कठिन से कठिन परिस्थिति में भी धर्म न छोड़ने से परिचित होकर

उसकी प्रशंसा करते हैं। कृष्ण जी के व्यक्तित्व का विराट रूप भी महाभारत युद्ध सम्पन्न होने के कारण ही प्रकाश में आया और इसी कारण वह आज आर्य हिन्दू जाति के पूज्य व स्तुत्य हैं। सभी मनुष्यों के जीवन में ऐसे क्षण आते हैं जब उन्हें निराशा व अवसाद से गुजरना पड़ता है। परिवारों में प्रिय जनों की मृत्यु पर भी मनुष्य दुःख व शोक में डूब जाते हैं। ऐसे समय में भी कृष्ण जी आत्मा बोध विषयक यह उपदेश व गीता का अध्ययन मनुष्यों का दुःख व शोक को दूर करता है। वह निराश व दुःखी व्यक्ति आत्मा की नश्वरता व शुभ कर्मों से मनुष्यों के देव कोटि में जन्म लेने की व्यवस्था को जानकर निर्भय होकर हर स्थिति का सामना करने में सक्षम होते हैं।

महर्षि दयानन्द ने श्री कृष्ण जी को ऋषि व योगियों के समान आप्त पुरुष की संज्ञा दी है। सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में वह श्री कृष्ण जी की प्रशंसा में उनके यथार्थ व्यक्तित्व का युक्तियुक्त मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं कि **'देखो! श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिस में कोई अधर्म का आचरण श्री कृष्ण जी ने जन्म से मरणपर्यन्त, बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा। और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष (कृष्णजी पर) लगाये हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी, कुब्जादासी से समागम, पर स्त्रियों से रास-मण्डल व क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्री कृष्ण जी में लगाये हैं। इस को पढ़-पढ़ा व सुन-सुना के अन्य मत वाले श्री कृष्ण जी की बहुत सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्री कृष्ण जी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्यों कर होती है।'** इन पंक्तियों में ऋषि दयानन्द ने, जो महाभारत काल के बाद वेदों के मन्त्रों के सत्य अर्थों का प्रकाश करने वाले सबसे बड़े प्रमाणिक विद्वान, ऋषि व योगी हुए हैं, उन्होंने श्री कृष्ण जी को आप्त पुरुष एवं महात्मा शब्द से सम्मानित किया है। यही कृष्ण जी का सच्चा स्वरूप है। मूर्तिपूजा के एक अन्य प्रसंग में स्वामी दयानन्द जी ने द्वारिका के श्री कृष्ण मन्दिर को अंग्रेजों द्वारा तोप से तोड़ दिये जाने का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि 1857 के उस युद्ध में

वहाँ बाघेर लोगों ने अंग्रेजों के विरुद्ध वीरतापूर्वक युद्ध किया लेकिन कृष्ण जी की मूर्ति एक मक्खी की टांग भी न तोड़ सकी। जो श्री कृष्ण जी जीवित होते तो अंग्रेजों के धुर्रे उड़ा देते और यह अंग्रेज (देश से) भागते फिरते। अतः मूर्तिपूजा और श्री कृष्ण जी के चरित्र को दूषित करने वाला भागवत पुराण त्याज्य है जिससे श्री कृष्ण जी का अपयश रुके और महाभारत में वर्णित उनकी सत्कीर्ति का प्रचार हो।

आगामी श्री कृष्ण जन्माष्टमी को ध्यान में रखकर हमने यह लेख लिखा है। श्रीकृष्ण से संबंधित पुस्तकों के लिए देखें पृष्ठ 20। इसी के साथ इसे समाप्त करते हैं। ओ३म् शम्।

यज्ञाग्नि की शिक्षा तथा प्रेरणा

अग्नि भगवान से ऐसी प्रार्थना यजमान करता है कि:–

ॐ अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय....

–आश्वलायन गृह्यसूत्र

यज्ञ को अग्निहोत्र कहते हैं। अग्नि ही यज्ञ का प्रधान देवता है। हवन–सामग्री को अग्नि के मुख में ही डालते हैं। अग्नि को ईश्वर–रूप मानकर उसकी पूजा करना ही अग्निहोत्र है। अग्नि रूपी परमात्मा की निकटता का अनुभव करने से उसके गुणों को भी अपने में धारण करना चाहिए एवं उसकी विशेषताओं को स्मरण करते हुए अपने आपको अग्निवत् होने की दिशा में अग्रसर बनाना चाहिए। नीचे अग्नि देव से प्राप्त होने वाली शिक्षा तथा प्रेरणा का कुछ दिग्दर्शन कर रहे हैं।

(1) अग्नि का स्वभाव उष्णता है। हमारे विचारों और कार्यों में भी तेजस्विता होनी चाहिए। आलस्य, शिथिलता, मलीनता, निराशा, अवसाद यह अन्ध–तामसिकता के गुण हैं, अग्नि के गुणों से यह पूर्ण विपरीत हैं। जिस प्रकार अग्नि सदा गरम रहती है, कभी भी ठण्डी नहीं पड़ती, उसी प्रकार हमारी नसों में भी उष्ण रक्त बहना चाहिए, हमारी भुजाएँ, काम करने के लिए फड़कती रहें, हमारा मस्तिष्क प्रगतिशील, बुराई के विरुद्ध एवं अच्छाई के पक्ष में उत्साहपूर्ण कार्य करता रहे।

(2) अग्नि में जो भी वस्तु पड़ती है, उसे वह अपने समान बना लेती है। निकटवर्ती लोगों को अपना गुण, ज्ञान एवं सहयोग देकर हम भी उन्हें वैसा ही बनाने का प्रयत्न करें। अग्नि के निकट पहुँचकर लकड़ी, कोयला आदि साधारण वस्तुएँ भी अग्नि बन जाती हैं, हम अपनी

विशेषताओं से निकटवर्ती लोगों को भी वैसा ही सद्गुणी बनाने का प्रयत्न करें।

(3) अग्नि जब तक जलती है, तब तक उष्णता को नष्ट नहीं होने देती। हम भी अपने आत्मबल से ब्रह्म तेज को मृत्यु काल तक बुझने न दें।

(4) हमारी देह, **भस्मान्तं शरीरम्** है। वह अग्नि का भोजन है। न मालूम किस दिन यह देह अग्नि की भेंट हो जाय, इसलिए जीवन की नश्वरता को समझते हुए सत्कर्म के लिये शीघ्रता करें।

(5) अग्नि पहले अपने में ज्वलन शक्ति धारण करती है, तब किसी दूसरी वस्तु को जलाने में समर्थ होती है। हम पहले स्वयं उन गुणों को धारण करें जिन्हें दूसरों में देखना चाहते हैं। उपदेश देकर नहीं, वरन् अपना उदाहरण उपस्थित करके ही हम दूसरों को कोई शिक्षा दे सकते हैं। जो गुण हम में हैं वैसे ही गुण वाले दूसरे लोग भी हमारे समीप आवेंगे और वैसा ही हमारा परिवार बनेगा। इसलिये जैसा वातावरण हम अपने चारों ओर देखना चाहते हों, पहले स्वयं वैसा बनने का प्रयत्न करें।

(6) अग्नि, जैसे मलिन वस्तुओं को स्पर्श करके स्वयं मलिन नहीं बनती, वरन् दूषित वस्तुओं को भी अपने समान पवित्र बनाती है, वैसे ही दूसरों की बुराइयों से हम प्रभावित न हों। स्वयं बुरे न बनने लगें, वरन् अपनी अच्छाइयों से उन्हें प्रभावित करके पवित्र बनावें।

(7) अग्नि जहाँ रहती है वहीं प्रकाश फैलता है। हम भी ब्रह्म-अग्नि के उपासक बनकर ज्ञान का प्रकाश चारों ओर फैलावें, अज्ञान के अन्धकार को दूर करें। **तमसो मा ज्योतर्गमय** हमारा प्रत्येक कदम अन्धकार से निकल कर प्रकाश की ओर चलने के लिये बढ़े।

(8) अग्नि की ज्वाला सदा ऊपर को उठती रहती है। मोमबत्ती की लौ नीचे की तरफ उलटें तो भी वह ऊपर की ओर ही उठेगी। उसी प्रकार हमारा लक्ष्य, उद्देश्य एवं कार्य सदा ऊपर की ओर हो, अधोगामी न बने।

(9) अग्नि में जो भी वस्तु डाली जाती है, उसे वह अपने पास नहीं रखती, वरन् उसे सूक्ष्म बनाकर वायु को, देवताओं को, बाँट देती है। हमें जो वस्तुएँ ईश्वर की ओर से, संसार की ओर से मिलती हैं, उन्हें केवल उतनी ही मात्रा में ग्रहण करें, जितने से जीवन रूपी अग्नि को ईंधन प्राप्त होता रहे। शेष का परिग्रह, संचय वा स्वामित्व का लोभ न करके उसे लोक-हित के लिए ही अर्पित करते रहें।

"वृक्षों में जीव विषयक ऋषि दयानन्द के विचार"

–मनमोहन कुमार आर्य,

वृक्षों में जीव है या नहीं, है तो वह जाग्रत, स्वप्न व सुषुप्ति किस अवस्था में है, इस पर विद्वानों के अपने–अपने विचार हैं। इस विषय पर एक बार आर्यजगत के सुप्रसिद्ध विद्वान व गुरुकल महाविद्यालय, ज्वालापुर के संस्थापक स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती जी का आर्यसमाज के ही विद्वान पं. गणपति शर्मा से शास्त्रार्थ भी हुआ था। यह शास्त्रार्थ लिखित रूप में उपलब्ध है जिसे पढ़कर दोनों पक्षों की युक्तियों को जाना जा सकता है। आज से 20–25 वर्ष पूर्व हम आर्य पत्र–पत्रिकाओं में आर्यसमाज के पुराने विद्वानों के लेख आदि पढ़ते रहते थे। आदिम सत्यार्थप्रकाश के बारहवें समुल्लास में ऋषि दयानन्द ने जैन मत के एक से पांच कोषीय जीव की चर्चा में वृक्षों में पांच इन्द्रियों से युक्त जीव न होने की उनकी मान्यता का खण्डन करते हुए वृक्षों में जीवात्मा की उपस्थिति को स्वीकार करते हुए उसका विस्तार से प्रतिपादन किया है। जीवों के विषय में जैन मतानुयायियों का उल्लेख कर स्वामी जी लिखते हैं कि वह ऐसा कहते हैं कि जीव जितने शरीरधारी हैं उनके पांच भेद हैं। एक इन्द्रिय, द्विन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। जैन मतानुयायी वृक्षादि जड़ में एक इन्द्रिय मानते हैं। इसका उत्तर देते हुए स्वामी दयानन्द जी कहते हैं कि जैनों की यह बात विचार शून्य है क्योंकि इन्द्रिय सूक्ष्म होने से कभी नहीं दिखाई पड़ती। परन्तु इन्द्रिय का काम देखने से अनुमान होता है कि इंद्रिय अवश्य हैं।

स्वामी दयानन्द जी इस प्रसंग में आगे लिखते हैं कि वृक्ष आदि के बीजों को जब पृथिवी में बोते हैं तब अंकुर ऊपर आता है और मूल नीचे जाता (रहता) है। जो उन (वृक्षों) को नेत्रेन्द्रिय न होता तो (वह) ऊपर–नीचे को कैसे देखता? इस काम से निश्चित जाना जाता है कि नेत्रेन्द्रिय जड़ वृक्षादिकों में भी हैं। बहुत (प्रकार की) लता होती हैं, जो वृक्ष और भित्ती के ऊपर चढ़ जाती हैं, जो (उनमें) नेत्रेन्द्रिय न होता तो

उसको (वृक्ष और भित्ति को) कैसे देखता तथा स्पर्शेन्द्रिय तो वे (जैन) भी मानते हैं। जीभ इन्द्रिय भी वृक्षादिकों में हैं क्योंकि मधुर जल से बाग आदि में जितने वृक्ष होते हैं, उनमें खारा जल देने से सूख जाते हैं। जीभ इन्द्रिय न होता तो खारे वा मीठे का स्वाद (वह वृक्ष) कैसे जानते? श्रोत्रेन्द्रिय भी वृक्षादिकों में हैं, क्योंकि जैसे कोई मनुष्य सोता हो, उसको अत्यन्त शब्द (तेज आवाज, शोर वा धमाका आदि) करने से सुन लेता है तथा तोप आदि के शब्द से भी वृक्षों में कम्प होता है, जो श्रोत्रेन्द्रिय न होता, तो कम्प क्यों होता क्योंकि अकस्मात् भयंकर शब्द के सुनने से मनुष्य, पशु, पक्षी अधिक कम्प जाते हैं, वैसे वृक्षादिक भी कम्प जाते हैं। जो वह कहें कि वायु के कम्प से वृक्ष में चेष्टा हो जाती है, अच्छा तो मनुष्यादिकों को भी वायु की चेष्टा से शब्द सुन पड़ता है, इससे वृक्षादिकों में भी क्षोत्रेन्द्रिय है।

नासिका इन्द्रिय भी (वृक्षों में) है क्योंकि वृक्षों का रोग धूप के देने से छूट जाता है, जो नासिकेन्द्रिय न होता तो गन्ध का ग्रहण कैसे करता। इससे नासिका इन्द्रिय भी वृक्षादिकों में है। त्वचा इन्द्रिय भी वृक्षों आदि में है, क्योंकि कुमोदिनी कमल, लज्जावती अर्थात् छुई-मुई ओषधि और सूर्यमुखी आदिक पुष्पों में और शीत तथा उष्ण वृक्षादिकों में भी जान पड़ते हैं क्योंकि शीत तथा अत्यन्त उष्णता से वृक्षादिक कुमला जाते हैं और सूख भी जाते हैं।

इससे तत्तत् इन्द्रियों का कर्म देखने से तत्तत् इन्द्रिय वृक्ष आदि में अवश्य मानना चाहिये। यह भ्रम जैन सम्प्रदाय वालों को इन्द्रियों के स्थूल गोलक नहीं देखने से हुआ है। सो इससे जैन लोग इन्द्रियों को नहीं जान सकते। परन्तु कार्य द्वारा सब बुद्धिमान् लोग वृक्षादिकों में भी इन्द्रिय जानते हैं, इसमें कुछ संदेह नहीं। और जहाँ जीव होगा, वहाँ इन्द्रिय अवश्य होगा, क्योंकि इन सब शक्तियों का जो संघात् वृक्षों में है, इसी को जीव कहते हैं। जहाँ जीव होगा वहाँ इन्द्रियाँ क्यों न होंगी?

ऋषि दयानन्द के इन विचारों से स्पष्ट है कि उनके विवेचन के अनुसार वह वृक्षों में अभिमानी जीव होना मानते थे। वृक्षों में इन जीवों में मनुष्यों की भाँति पाँचों इन्द्रियाँ भी होती है, ऐसा उनके विचारों से स्पष्ट है। पाठकों के विचारार्थ यह लेख प्रस्तुत है। ओ३म् शम्।

श्रावणी पर्व

वैदिक धर्म में स्वाध्याय की सर्वोपरि प्रधानता और महिमा बार-बार वर्णन की गई है। श्रावणी पर्व मनाने का एक उत्तम तरीका यह है कि वेदादि शास्त्रों का स्वाध्याय इस पर्व से अवश्य प्रारम्भ किया जाए। निम्नलिखित छोटी-बड़ी पुस्तकों से आप प्रेरणा लेकर इस प्रवृत्ति को बढ़ा सकते हैं:-

व्याख्यान शतक	स्वामी देवव्रत	350.00
पथ की पहचान	आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री	35.00
शंका समाधान	पं० रामचन्द्र देहलवी	8.00
वेद प्रवचन	पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय	160.00
ऋषि दयानन्द के सर्वश्रेष्ठ प्रवचन	महर्षि दयानन्द	75.00
दृष्टान्त समुच्चय	श्री शिवशर्मा 'उपदेशक'	125.00
वेद के पाठक सावधान!	शिवनारायण सिंह	150.00
सहेलियों की वार्ता (वैदिक सिद्धान्तों पर)	पं० सुरेशचन्द्र वेदालंकार	25.00
कुछ करो कुछ बनो	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	30.00
सामवेद शतकम्	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	30.00
ऋग्वेद शतकम्	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	30.00
यजुर्वेद शतकम्	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	30.00
अथर्ववेद शतकम्	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	30.00
वेद मंजरी	पं. रामनाथ वेदालंकार	150.00
स्वाध्याय सर्वस्य	स्वामी दीक्षानन्द जी	30.00
वैदिक दर्शन	पं० चमूपति एम. ए.	40.00
श्रुति सौरभ	पं० शिवकुमार शास्त्री	175.00
सत्योपदेशमाला	स्वामी सत्यानन्द	125.00
वैदिक विनय	आ० अभयदेव विद्यालंकार	250.00
ब्राह्मण की गौ	आ० अभयदेव विद्यालंकार	150.00
वैदिक सम्पत्ति	पं० रघुनन्दन शर्मा	450.00
स्वाध्याय सन्दीप	स्वामी वेदानन्द तीर्थ	350.00
वैदिक सम्पदा	पं० वीरसेन वेदश्रमी	300.00
ऋग्वेद एक सरल परिचय	डॉ० भवानीलाल भारतीय	65.00
यजुर्वेद एक सरल परिचय	डॉ० भवानीलाल भारतीय	65.00
सामवेद एक सरल परिचय	डॉ० भवानीलाल भारतीय	65.00
अथर्ववेद एक सरल परिचय	डॉ० भवानीलाल भारतीय	65.00
ईश्वरीय ज्ञान वेद	प्रो० बालकृष्ण एम. ए.	200.00
वेद मनीषा के अनमोल रत्न	महात्मा गोपाल स्वामी	65.00
वेदों की वाणी सन्तों की जुबानी	श्री मदन रहेजा	100.00
शान्ति मन्त्र	डॉ० पूर्ण सिंह डबास	15.00
धर्म की परिभाषा	डॉ० पूर्ण सिंह डबास	15.00

अगस्त २०१७ Registered with Regn. of News Paper for India
वेदप्रकाश R.No. 627/57 Regd. No. DL(DG-11)/8030/2015-17, U(DGPO) 01/2015-17
Posted at Delhi RMS, Delhi-110006

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी पर स्वाध्याय हेतु

आइए, इस बार जन्माष्टमी मनाते हुए श्रीकृष्ण का सच्चा स्वरूप जाने। गीता की शिक्षाओं को आत्मसात् करें तथा श्रीकृष्ण के जीवन से प्रेरणा लें। निम्न पुस्तकों को पढ़ें तथा प्रियजनों को इस अवसर पर उपहार स्वरूप दें–

1.	योगीराज श्रीकृष्ण	लाला लाजपतराय	125.00
2.	भगवान् श्रीकृष्ण और गीता उपदेश	स्वामी जगदीश्वरानन्द	25.00
3.	श्रीमद्भगवद्गीता	स्वामी समर्पणानन्द	135.00
4.	योगेश्वर श्रीकृष्ण	पं० चमूपति एम० ए०	110.00
5.	श्रीकृष्ण चरित	डॉ० भवानीलाल भारतीय	125.00
6.	महापुरुषों के जीवन से सीखें	आचार्य अभिमन्यु	30.00
7.	श्रीमद्भगवद्गीता	डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार	255.00
8.	श्रीमद्भगवद्गीता-एक अध्ययन	श्री गुरुदत्त	125.00
9.	महाभारतम्	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	1000.00
10.	श्रीमद्भगवद्गीता	डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन	250.00
11.	श्रीकृष्ण कथा		30.00
12.	श्रीकृष्ण का महान् व्यक्तित्व	प्रो० रामविचार	15.00
13.	मर्यादापुरुषोत्तम राम का महान व्यक्तित्व	प्रो० रामविचार	15.00
14.	श्रीमद्भगवद्गीता रहस्य	श्री लोकमान्य तिलक	600.00
15.	श्रीमद्भगवद्गीता	श्रीपाद दामोदर सातवलेकर	1200.00
16.	शान्तिदूत श्रीकृष्ण	स्वामी विद्यानन्द	300.00
17.	द्रौपदी का चीरहरण और श्रीकृष्ण	स्वामी विद्यानन्द	65.00
18.	महाभारत की विशेष शिक्षाएँ	स्वामी ब्रह्ममुनि	50.00
19.	रामायण की विशेष शिक्षाएँ	स्वामी ब्रह्ममुनि	30.00
20.	श्रीमद्भगवद्गीता (4 भाग)	स्वामी रामस्वरूप योगाचार्य	1450.00

प्राप्ति स्थानः विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

4408, नई सड़क, दिल्ली-6, दूरभाष 23977216, 65360255

Email: ajayarya16@gmail.com Web: www.vedicbooks.com